# अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता

वर्ष: ९ अर्द्ध वार्षिक अंक: 1

बंसत पंचमी माघ सुदी पंचमी विक्रम संवत 2081, 3 फरवरी 2025

## श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम

वेदान्त नगर, सीपरी बाजार, झाँसी (उ.प्र.)

# अखण्ड विशम्भरानन्द ज्ञान सरिता

**वर्ष 9, बसंत पंचमी, माघ शुक्ल विक्रम संवत् 2081**

स्वामी श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता संत आश्रम के लिये प्रकाशक, मुद्रक, प्रधान सम्पादक श्री राजेन्द्र कुमार मिश्रा द्वारा अमर ज्योति प्रेस, झांसी द्वारा मुद्रित किया गया व श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम, लहर देवी रोड, वेदान्त नगर, सीपरी बाजार, झांसी से प्रकाशित।

सम्पादक– श्री प्रमोद कुमार गुप्ता

**पं.सं. UPHIN/2016/73634**
**भारत सरकार**

**संस्थापक एवं संरक्षक:**
श्री आर. के. मिश्रा
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम धर्मार्थ समिति
लहरगिर्द, नालगंज
सीपरी बाजार, झांसी (उ.प्र.)

**आदि सम्पादक:**
ब्रह्मलीन परम पूज्य श्रद्धेय स्वामी शुकदेवानन्द जी

**प्रधान सम्पादक:**
श्री राजेन्द्र कुमार मिश्रा

**सम्पादक:**
श्री प्रमोद कुमार गुप्ता

**सम्पादन मण्डल:**
डॉ. रंजना शर्मा
श्रीमती कुमकुम बिसरिया
श्री अरविन्द देवलिया
श्री वैभव वर्मा

**प्रकाशन कार्यालय:**
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम
धर्मार्थ समिति लहरगिर्द, नालगंज
सीपरी बाजार, झांसी (उ.प्र.)
पिनकोड–284 003
मोबा. : 8604924948

**अर्द्धवार्षिक**

**मूल्य :** निःशुल्क वितरण स्वाध्याय हेतु

–मुद्रक–
**अमर ज्योति प्रेस**
सदर बाजार, झाँसी, मोबा. : 9415030917

# अनुक्रमणिका



| क्र.सं. | विवरण | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| 1. | सम्पादकीय | राजेन्द्र कुमार मिश्रा | 3 |
| 2. | पुरोवाक् | प्रमोद कुमार गुप्ता | 5 |
| 3. | प.पू. स्वामी शुकदेवानन्द जी का योग शिविर में प्रवचन – अष्टम् पुष्प | प्रमोद कुमार गुप्ता | 6 |
| 4. | आनन्द मीमांसा | ब्र. राघवेन्द्र चैतन्य | 8 |
| 5. | निम्बार्क : द्वैताद्वैतवाद | पं. चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी | 10 |
| 6. | विकार युक्त जीवन | प्रमोद कुमार गुप्ता | 12 |
| 7. | आत्मा की खोज ही गीता | अरविन्द देवलिया | 14 |
| 8. | भगवान शंकर की महिमा | रंजना शर्मा | 18 |
| 9. | किसकी पूजा होगी | शंकरदास | 20 |
| 10. | समर्थ होकर भी निन्दा का पात्र | कुमकुम बिसारिया | 21 |
| 11. | श्रेष्ठ कौन | ब्र. राघवेन्द्र चैतन्य | 23 |
| 12. | मान रहित होना | वैभव वर्मा | 24 |
| 13. | मेरे प्यारे सद्गुरुदेव | रेनू खरे/रागिनी खरे | 25 |
| 14. | सत्व शुद्धि | स्वामी वेद प्रकाशानन्द | 26 |
| 15. | महावाक्य | | 27 |
| 16. | सद्गुरु आरती | | 28 |

# संपादकीय

कम्बन महर्षि ने तमिल रामायण में लिखा है कि रावण के समान बलशाली, तपस्वी और विद्वान कोई दूसरा न था। जब भगवान श्रीराम अपनी सारी सेना लेकर लंका पर चढ़ाई हेतु रामेश्वरम् में उपस्थित हुए तब चढ़ाई से पूर्व उन्होंने महादेव जी की रेत की मूर्ति बनाकर पूजा कराने हेतु रावण का पुरोहित के रूप में आवाहन किया था।

वही रावण जब लंका युद्ध में भगवान श्रीराम से परास्त होकर रणभूमि में घायल होकर मरने लगा तो उसने भगवान राम से पूछा, "महाराज! नाम में हम आपसे बड़े हैं, आपका नाम राम है, उसमें दो अक्षर हैं। मेरा नाम रावण है, जिसमें तीन अक्षर हैं। मेरी जाति बड़ी है, मैं ब्राह्मण हूँ और आप क्षत्रिय हैं। रूप में मैं आपसे बड़ा हूँ, मेरे दस मुख बीस हाथ हैं, आपके एक मुख दो हाथ हैं। मैं तप में बड़ा हूँ, मैंने सिर काट-काट कर शंकर जी को चढ़ाये। ताकत में मैं आपसे बड़ा हूँ। एक समय कैलाश पर्वत पर भगवान महादेव के साथ कैलाश पर्वत पर जब सब देवता विराजमान थे तो मैंने कैलाश पर्वत को गेंद की तरह उठा लिया था। विद्या में मैं आपसे बड़ा हूँ, जब रामेश्वरम् में समुद्र तट पर आपने शंकर जी की स्थापना की तो पुरोहित के कार्य हेतु आपने हमको ही बुलाया था। अतः मैं आपसे यह पूंछना चाहता हूँ कि सभी तरह से मैं आपसे उन्नत होने के उपरान्त भी आपसे कैसे पराजित हो गया।"

इस पर भगवान राम ने कहा कि, "हे रावण! यह गृहस्थ आश्रम एक गाड़ी के समान है। इसका एक पहिया पुरुष है तो दूसरा स्त्री है। जब तक दोनों पहियों की चाल ठीक रहेगी, गाड़ी ठीक चलती रहेगी। जब मनुष्य एक नारी व्रत हो और स्त्री पतिव्रत का पालन करे तो यह घर स्वर्ग है और अगर इसमें खोट है तो नरक समान है।"

यह सुनकर रावण बोला, "मैं समझ गया। मैंने सीता जी का अपहरण कर अपना चाल-चलन गलत किया, इससे मेरा सर्वस्व नाश हुआ और आपकी विजय हुई।"

कहने का तात्पर्य है कि गृहस्थ आश्रम में सभी पुरुषों को भगवान राम के मर्यादानुसार और सभी स्त्रियों को देवी सीता का अनुकरण करना चाहिये। तभी यह देश और समाज व्यभिचार मुक्त एक सभ्य समाज बन सकता है। जिसके नागरिक द्वेष रहित सद्भाव से मिल-जुलकर रह सकते हैं, यही रामराज्य कहलाता है।

**माया को सब कोई भजे, माधव भजे न कोई।**
**जो माधव को भजे, माया चेरी होय।।**

आज के युवा सोशल मीडिया से बहुत ज्यादा प्रेरित हैं। छोटे-छोटे बच्चे स्मार्ट फोन लिये इण्टरनेट, फेसबुक, इंस्टाग्राम और न जाने कितने अन्य सोशल मीडिया की सर्फिंग में लगे रहते हैं। आये दिन ऐसी दुर्घटनाओं की सूचना आती रहती है जब युवा सैल्फी लेते समय दुर्घटना यहाँ तक कि मौत के शिकार हो रहे हैं। युवाओं में आत्म बल इतना क्षीण हो रहा है

कि जरा-सी असफलता उनको आत्महत्या की ओर प्रेरित कर देती है। माता-पिता का यह कर्तव्य है कि वह अपने बच्चों का उनके उचित लालन-पालन के साथ उनका पथ प्रदर्शन भी करें। उनको उचित और अनुचित आचरण का अर्थ छोटी अवस्था से ही करायें। इस प्रकार वह उनको समाज के एक जिम्मेदार नागरिक बनाने में सहायक होंगे। उचित और अनुचित आचरण की शिक्षा उनमें विवेक की उत्पत्ति में सहायक होगी।

एक बार विवेक की उत्पत्ति हो गई तो हर परिस्थिति में विवेक द्वारा आनन्द की स्थिति बनी रहेगी। विवेक अध्यात्म की पहली सीढ़ी है। विवेकी हर कार्य करने से पूर्व विचार करता है कि इस कार्य से सत् का संज्ञान होता है या असत् का। सत् का आनन्द चिर आनन्द होता है, स्थिर होता है, असत् का अस्थाई, क्षण मात्र का।

हर कार्य हर क्रिया करने से पूर्व हमें विचार करना है कि हम जो कार्य कर रहे हैं, उसमें सत् का संज्ञान होता है या असत् का। असत् का संज्ञान होने पर हम विचार करने को बाधित होंगे कि क्या हम असत् रूपी भंवरजाल से हमको आनन्द की प्राप्ति होगी अथवा यह आनन्द क्षण भंगुर होगा, स्थिर न होगा। इन विचारों के विद्यासन से वैराग्य की उत्पत्ति होना अश्वयम्भावी है। शनैः शनैः वह सम्पत्ति और मोक्षत्व की प्रेरणा इस बात पर टिकी रहेगी कि प्रयास कितना किया। इस तरह आत्मोहिक साधक गुरु कृपा से आत्म साक्षात्कार प्राप्त करने में सफलता प्राप्त करते हैं।

**– राजेन्द्र मिश्रा** (देहरादून)
प्रधान सम्पादक

# प्रारब्ध का निर्माण

हमारे द्वारा संपन्न प्रत्येक शुभाशुभ कर्मों द्वारा ही हमारे प्रारब्ध का निर्माण होता है। जीवन को केवल प्रारब्ध के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता है। हम आज जो हैं, जैसे हैं, उसमें प्रारब्ध के साथ-साथ हमारे द्वारा कृत कर्मों की भी बड़ी भूमिका होती है।

पुरुषार्थ किए बिना फल की इच्छा करना और उस इच्छा का पूर्ण न होना प्रारब्ध दोष नहीं अपितु पुरुषार्थ के अनुपात में फल की प्राप्ति न होना अवश्य प्रारब्ध दोष है।

पुरुषार्थ के अनुपात में फल की प्राप्ति न हो पाना ही प्रारब्ध है। भगवान श्री ष्ण भी अर्जुन को बार-बार यही समझा रहे हैं कि तुम सतत शुभ और श्रेष्ठ कर्म करते रहो ताकि तुम्हारा कर्म ही योग बन जाए।

जहाँ कर्म ही योग बन जाता है वहाँ योगेश्वर को भी आते देर नहीं लगती। कर्मशील लोग अपने प्रारब्ध के निर्माता स्वयं होते हैं। धैर्य पूर्वक श्रेष्ठ कर्म करते रहें, श्रेष्ठ प्रारब्ध का निर्माण अवश्य होगा।

# पुरोवाक्........

सनातन यानि सदा विद्यमान रहने वाला धर्म, जिसका न तो कभी आदि है और न ही कभी उसका अंत होगा। निश्चित रूप से ऐसा सनातन धर्म मानव समाज के लिए सार्वभौमिकता के साथ सदैव उपयोगी रहता है। वह वैदिक धर्म है, जिसका ज्ञान वेदों, उपनिषदों एवं आर्य ग्रन्थों से हमें प्राप्त होता है। मनुष्य जीवन के लिए जो उपयोगी वाक्यांश हैं– **"परहित सरिस धर्म नहिं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।"**

रामचरित मानस के उत्तर काण्ड में गोस्वामी तुलसीदास जी ने सनातन का मूल रख दिया है। जिसको विश्व में स्थापित विभिन्न धर्म मतावलंबी किसी न किसी रूप में स्वीकार करते हुए इसे अपनी भाषा के द्वारा धर्म सूत्र प्रतिपादित करके अपने अनुयायियों को देते हैं। किसी का दिल न दुखाना, दुःखियों को यथासंभव सहायता पहुँचाकर उनके दुःखों को दूर करना। मैं समझता हूँ कि चाहे मुस्लिम हो, चाहे ईसाई हो, चाहे पारसी हो या अन्यान्य मजहब के हों, कोई भी इस सूत्र को नहीं नकार सकता। वह यह भी नहीं कह सकता कि यह सूत्र वेदान्त से आया है, इसलिए हम इसे नहीं मान सकते। फिर आज सनातन को लेकर स्वार्थ के निहितार्थ समाज में कुछ संकीर्ण मानसिकता के लोग अपने अनुयायियों से सनातन की ओछी विवेचना करके उन्हें भ्रमित करने का कुचक्र रचने में लगे हुए हैं।

ऐसे चल रहे विकट कालखण्ड में हमें अपनी संस्कृति एवं धर्मों के मूल सनातन वैदिक धर्म, वेदान्त को जीवंत रखना होगा। वेदान्त में तो आत्मा को सनातन माना है। निश्चित रूप से आत्मा की सेवा करना व्यक्ति से ऊपर उठकर समष्टि के साथ एक होना है। वेदान्त ही वह शाश्वत् धर्म है जो सारे विभेदों को मिटाने का मूल मंत्र (सूत्र) देता है। संकीर्ण मानसिकता के कारण अगर हम उसको स्वीकार नहीं करते, तो वह हमारे अन्दर का विकार ही है। संसार का कौन–सा व्यक्ति या कौन–सा धर्म सबका भला करना, सबका हित करना, सभी की सेवा करना स्वीकार्य नहीं करता। मैं तो दावे से कह सकता हूँ कि पृथ्वी का प्रत्येक मानव इसे स्वीकारेगा, यही है हम सबका शाश्वत् धर्म।

वेदान्त वह है जिसका न कभी आदि है और न कभी अन्त होगा। इसके मूल स्वरूप को जन–जन तक पहुँचाने का कार्य झाँसी आश्रम से प्रकाशित अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता पत्रिका करती है। जिसमें निहित सार्थक भाव आपको प्रतीत होते हैं, जो आपको जीवन दिशा देने का कार्य करते हैं। उन्हें आप पूज्य गुरुदेव जी का हम सबके साथ अहर्निश विराजमान ही रहना समझें। गुरु महाराज तो हम सबके साथ विद्यमान नहीं हैं किन्तु उनकी आत्म शक्ति सदैव हम सबके साथ है। वही हम सबका प्रेरणा स्रोत संबल है।

**– प्रमोद कुमार गुप्ता**
संपादक

# परम पूज्यनीय श्री स्वामी शुकदेवानन्द का योग शिविर में प्रवचन – अष्टम् पुष्प

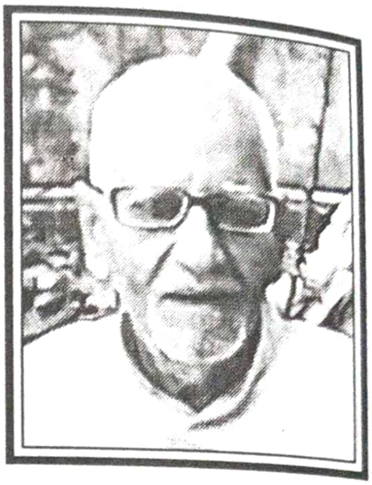

आध्यात्म दृष्टि से जब हम विचार करते हैं तो सर्वत्र जो भी नजर आता है, वह सबका सब परमात्मा की लीला का विलास ही दृष्टिगोचर होता है। हम देखते हैं कि परमात्मा की इस अद्‌भुत रचना में वह प्राण रूप से समाया हुआ है। जब हम उसको अपने अन्तर मन में टटोलते हैं, तो अनुभव करते हैं कि चाहे हम कानों से सुनें, आंखों से देखें, त्वचा से स्पर्श करें, जिह्वा से किसी खाद्य पदार्थ को चखें अथवा नासिका से गंध ग्रहण करें, वह परमात्मा ही हमारे अन्दर बैठा हुआ है जो कानों से सुन रहा है, आंखों से देख रहा है, त्वचा से स्पर्श का अनुभव कर रहा है, जिह्वा से स्वाद ले रहा है एवं नासिका से गंध को जान रहा है। वही वायु में प्राण शक्ति बनकर कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म को कर रहा है, इस प्रकार से अन्दर-बाहर सर्वत्र परमात्मा को ही सत्ता अनुभव में आती है। वह परमात्म सत्ता निर्विकार है, निराकार है एवं सबमें व्यापक है। उसी से एकता, यानी हम अपने को परमात्मा से जोड़े इसी का नाम योग है।

चेतन सत्ता कीट-पतंग, पशु-पक्षी से लेकर मनुष्यों, वनस्पतियों, औषधियों तथा वृक्षों में व्याप्त है। उस अद्वितीय चेतन शक्ति का नाम ही ब्रह्म है, सब पर शासन करने वाली शक्ति का नाम ईश्वर है। सबका सृजन करने के कारण वहीं ब्रह्मा है, पालन करने से उसी को विष्णु कहते हैं एवं संहार करने वाला होने से उसी को शंकर कहते हैं। वही उनन्चास नामों से पुकारी जाने वाली वायु है वही हमारे अन्दर प्राण-अपान, उदान-समान एवं ब्यान के रूप में प्राण शक्ति है और वही हमारे अन्दर चतुर्विद् (भक्ष्य, भोज्य, चोस्य, लेह) प्रकार के अन्न को पचाने वाला है। वही सूर्य में तेज, अग्नि में ऊष्णता, जल में रस, पृथ्वी में गंध, वायु में शक्ति एवं चन्द्रमा में शीतलता है। वह चैतन्य तत्त्व अनेक रूपों में हमारा पालन करते हुए भी सबसे निर्विकार है। उसी तत्व का नाम आत्मा है। सबकी आत्मा होने से वही परमात्मा है, सबमें व्यापक होने से उसी का नाम ब्रह्म है। सबका जानने वाला वह ब्रह्म चित् कहलाता है, उसी में समस्त सृष्टि, समुद्र में लहरों की तरह प्रतीत हो रही हैं। इसलिए वही सत् है, हमारे अन्दर आनन्द रूप में भी वही है इसी से उसको हम सच्चिदानन्द नाम से जानते हैं।

वही हमारा, आपका, सबका "मैं" है जो उसको "मैं" के रूप में पहचान लेता है, वह फिर किसी से घृणा नहीं करता, उसको सबमें परमात्मा ही दृष्टिगोचर होता है। वह सबको अपने में देखता है एवं अपने को सबमें देखता है इसी को "ब्राह्मी दृष्टि" कहते हैं। उसके अतिरिक्त जब हमारी दृष्टि में सब परमात्मा दृष्टिगोचर होने लगता है, परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नजर नहीं आता। जैसे समस्त स्वर्ण-आभूषणों में स्वर्ण ही होता है, केवल भिन्न-भिन्न

आकृत्तियां कल्पित हैं। इसी प्रकार से सारी सृष्टि में एक परमात्म–तत्व ही सत् है। सृष्टि के नाना रूप, स्वर्ण में आभूषणों की तरह कल्पित प्रतीत है। यही अद्वैत अथवा ब्राह्मी दृष्टि है। ऐसी दृष्टि वाला व्यक्ति समस्त वासनाओं से मुक्त होकर पुनः माँ के गर्भ में नहीं आता, इसी का नाम मुक्ति है।

संकलनकर्ता– **प्रमोद कुमार गुप्ता**
योग प्रशिक्षक, झाँसी

---

# चिंतन

अनमोल तेरा जीवन, यूँ ही गवाँ रहा है।
किस ओर तेरी मंजिल, किस ओर जा रहा है॥
सपनों की नींद में ही, यह रात ढल न जाये।
पल भर का क्या भरोसा, कही जाँ निकल न जायें॥

गिनती की हैं साँसें, यूं ही लुटा रहा है।
किस ओर ................................................॥

जायेगा जब यहाँ से कोई न साथ देगा।
इस हाथ जो दिया है उस हाथ जाके लेगा॥

कर्मों की है ये खेती, फल आज पा रहा है।
किस ओर ................................................॥

माया के बंधनों ने क्यों आज तुझ को घेरा।
सुख के सभी हैं साथी, कोई नहीं है तेरा॥

तेरा ही मोह तुझको, हरदम सता रहा है।
किस ओर ................................................॥

जब तक है भेद मन में, भगवान से जुदा है।
खोले जो मन का दर्पण, इस घर में भी खुदा है॥

तू शुद्ध रूप होकर, दुःख आज पा रहा है।
किस ओर ................................................॥

**– नेहा ठाकुर**

# आनन्द मीमांसा

श्री रामचरित मानस में गोस्वामी जी ने कहा कि जो आनन्द सिन्धु हैं वही राम हैं। जीव के सभी कर्मों के पीछे जो अन्तिम की प्रातव्य की मांग है, वह आनन्द की ही है। जिस प्रकार कोई नदी निरन्तर सागर की ओर ही दौड़ती रहती है। उसी प्रकार हर जीव इस आनन्द रूपी आत्माराम की ओर ही दौड़ रहा है। चाहे वह आस्तिक हो या नास्तिक। किन्तु मांग सबकी एक ही है। वेदों में इसी आनन्द विशेष्ज्ञ की अनुभूति होती है। वह भी वास्तव में ब्रह्मानन्द ही है। मानस में इसी को 'राम' कहा गया है।

आनन्द पर विचार करना चाहिए कि इसकी उत्पत्ति कैसे होती है। यदि आनन्द को किसी क्रिया या कर्म का परिणाम माने तो प्रश्न उठेगा कि यह किस क्रिया या कर्म का परिणाम है। किसी व्यकित को एक कर्म विशेष द्वारा आनन्द अनुभव आता है किन्तु दूसरे व्यक्ति को उसी कर्म द्वारा दुःख या कष्ट की अनुभूति होती है। किसी को संगीत आनन्दमय लगता है किन्तु किसी को वह शोर लगता है। इस दृष्टि से वह क्रियात्मक उत्पन्न आनन्द "क्रिया परिच्छिन्न" हो गया। क्रिया करेंगे तो मिलेगा, वरना नहीं। और एक ही क्रिया का प्रभाव अलग–अलग दिखने के कारण वह "व्यक्ति परिच्छिन्न" भी हो गया। कोई भी कभी सीमित समय के लिए ही होता है, इसलिए ये कार्मिक आनन्द "काल परिच्छिन्न" भी हो गया। परिच्छिन्न माने परितः छिन्नः। उस आनन्द को काटने वाले बहुत से तत्त्व हैं। कर्म किया जा सकता है किन्तु कर्ता पूर्णतः उस कर्म को करने के लिए सक्षम नहीं है, कर्ता सक्षम है किन्तु पर्याप्त साधन नहीं है, कर्ता कर्म दोनों ठीक हैं किन्तु पर्याप्त साधन नहीं हैं, कर्ता ने कर्म कर भी लिया पर वह प्रभाव प्रकट नहीं हुआ जो दूसरे कर्ता के चित्त में प्रकट हुआ। इस प्रकार कर्म द्वारा अनुभूत आनन्द तो छिन्न–भिन्न है। निष्कर्ष रूप में कहें तो जो आनन्द विशेष हम कर्म द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं वह तो स्वयं क्रिया व्यक्ति, देश, काल, अवस्था आदि से परिचित हो अब तक के विचार से यह स्पष्ट हो गया कि कर्म विशेष द्वारा प्राप्त आनन्द विशेष हमारा मुख्य प्राप्तव्य नहीं है। जिसकी महिमा शास्त्रों में वर्णित है।

तो वास्तव में आनन्द क्या है? वेदों ने कहा कि "आनन्दमेव ब्रह्म" ब्रह्म का ही दूसरा नाम आनन्द है। आनन्द ही ब्रह्म है। ब्रह्म तो आत्मा ही है, इसलिए आत्मा का ही दूसरा नाम आनन्द हो। यह आनन्द तत्व है, स्वरूप है। किसी गुण, क्रिया या परिस्थिति विशेष का परिणाम नहीं है। हम इस आनन्द को जब पहचानते हैं, जब ये हमारी वृत्ति (विचार) के घेरे में आ जाता है। जब वह हमारी वृत्ति में प्रतिविम्बित होता है। तब एक विशेष प्रकार की वृत्ति बनती है, जिसे हम Mood मूड कहते हैं। चूंकि हम उस मनःस्थिति विशेष में सुख मिलता है। इसलिए हम उस विशेष मनःस्थिति (Mood) को बनाये रखना चाहते हैं। हमारा आनन्द इस विशेष मनःस्थिति, वृत्ति या Mood बाहर अनुकूल परिस्थिति से बनती दिखती है। इसलिए हम उस अनुकूल परिस्थिति के निर्माण हेतु वांछित कर्म करते हैं। इस प्रकार कर्म से अनुकूल परिस्थिति, उससे विशेष मनःस्थिति (Mood) और फिर उसके स्वरूपानन्द के प्रतिविम्ब पड़ने पर हमें "आनन्द" की अनुभूति होती है। किन्तु यह आनन्द कर्म के फल स्वरूप प्रकट हुआ है, कार्मिक है। इसलिए कर्म के साथ जो अनित्य होने का दोष है, वह इस आनन्द के साथ जो अनित्य होने का दोष है, वह इस आनन्द के साथ भी होगा। अर्थात् ये आनन्द भी अनित्य ही सिद्ध हुआ। क्योंकि ये

कर्म के वंश का है।

शास्त्र कहता है कि आनन्द हमारा मूल स्वरूप है, किन्तु इनको न पहचानने के कारण हम अपनी ही वस्तु को खरीदने का हास्यास्पद कार्य कर रहे हैं। क्योंकि यदि विम्ब ही न हो तो प्रतिविम्ब कैसे बन सकता है। विम्ब की सत्ता प्रतिविम्ब पर आश्रित नहीं है और जो प्रतिविम्बित हो रहा है वह भी वास्तव में विम्ब ही है। किन्तु इसको न जानने के कारण हम अनुकूल परिस्थिति बनाने के लिए कर्म रूपी शुल्क देते हैं, मजदूरी करते हैं और अन्त में अपने ही स्वरूपानन्द को विषयानन्द की प्रक्रिया से प्राप्त करते हैं। यह सब माया का खेल है। शास्त्र संत कहते हैं कि विम्ब को ही आत्मा, ब्रह्म, स्वरूप, परमात्मा, राम कहते हैं। जो हम ही हैं, वह हमसे पराया दूसरा नहीं है। प्रतिविम्ब हो या न हो इससे विम्ब पर कोई फर्क नहीं पड़ता है। प्रतिविम्ब के बिना भी विम्ब की सत्ता नित्य एकरस रूप से विद्यमान हो। भगवान शंकराचार्य जी कहते हैं कि जो आनन्द विशेष या विषयानन्द हमें अनुभव में आ रहा है। वह शोभन परिस्थिति या समृद्धि का परिणाम लगता है, परन्तु ऐसा नहीं है। कई बार तो समृद्धि बढ़ने पर आनन्द कम होने लगता है। आनन्द और समृद्धि या बाहरी परिस्थिति का कोई सहचारी भाव नहीं है। आनन्द का सीधा-सीधा सम्बन्ध हम वृत्ति से हैं, परिस्थिति से नहीं। किसी साधक के अन्तःकरण में यदि परिस्थिति निरपेक्ष वृत्ति बन जाए तो उसके जीवन में आनन्द ही आनन्द है। उसको फिर अपने स्वरूपानन्द की अनुभूति हेतु कर्म या अनुकूल परिस्थिति निर्माण रूपी किराया नहीं देना पड़ेगा। यही संत जनों, योगियों का आनन्द है। वह परिस्थिति पर निर्भर नहीं है।

भगवान शंकराचार्य ने ऐसी निरपेक्ष वृत्ति के निर्माण के तीन साधन बताए हैं- तपसा, विद्यया, श्रद्धया। तपस्या विद्या माने उपासना और श्रद्धा से जिस साधक का अन्तःकरण जितना निर्मल होगा, उतनी ही उसकी पराधीनता समाप्त होगी। ये तीनों साधन भी विचार की मांग करते हैं। ये तीनों शास्त्रीय होने चाहिए अर्थात् मनमानी तपस्या नहीं, मनमानी उपासना नहीं और बिना श्रद्धेय के श्रद्धा कैसे? जीवन में कोई श्रद्धेय गुरु होना चाहिए, जिस पर हमें श्रद्धा हो। वह हमें जानते हो। हमारे मानसिक स्तर को जानते हो। हम उनके शासन में सहर्ष रह सकते हैं और वे हम पर शासन कर सकते हैं। ऐसे "मेरे गुरु" जब मुझे जिस विशेष तपस्या एवं उपासना का मार्गदर्शन प्रदान करें, उसे हम निरन्तर करें। इस प्रक्रिया से हमारा अन्तःकरण निरन्तर निर्मल, शान्त, पावन होता जाएगा। हमारा जीवन परिस्थिति निरपेक्षता की स्थिति में पहुंच जावे। ऐसा होने पर जिस अपने ही आनन्द से, स्वरूपानन्द से हम जन्म-जन्मान्तर से बिछुड़ा अनुभव कर रहे हैं, जिसको पाने के लिए कितने कर्म, कितनी परिस्थितियों का निर्माण हम करते रहे हैं, वह आनन्द आत्मानन्द के रूप में हमें सहज अनायास ही अनुभव में आने लगता है। इसी को गोस्वामी जी ने कहा "निर्मल मन जन सो मोहि पावा"। आइए हम भी आवाहन करें परमात्मा से कि हमारे जीवन में भी ऐसा बसंत आवे, जिसमें परिस्थिति निरेपक्ष आनन्द रूपी पुष्पों से जीवन आनन्दमय हो जावे।

**– ब्र. राघवेन्द्र चैतन्य**
चिन्मय मिशन, झाँसी
मो.- 8707209996

# निम्बार्क : द्वैताद्वैतवाद

निम्बार्काचार्य द्वैताद्वैतवाद के संस्थापक माने जाते हैं। इनका समय ११६५ ई. माना जाता है। इनका जन्म बेलारी जिले के निम्बपुर में तेलगू ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम जगन्नाथ और माता का नाम सरस्वती था। निम्बार्क का सर्वप्रथम नाम नियमानन्द था। इन्होंने निम्ब के वृक्ष पर रात्रि में अर्क (सूर्य) का दर्शन किया था। सम्भवतः इसी कारण इनका नाम निम्बार्क पड़ा। निम्बार्काचार्य ने अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिनमें प्रमुख हैं-

**वेदान्त पारिजात-सौरभ-** यह ब्रह्मसूत्र पर भाष्य है।

**दशश्लोकी-** यह दश-श्लोकों में सिद्धान्त प्रतिपादक ग्रन्थ है। इस पर श्री हरिव्यास की टीका है।

कृष्णस्तवराज- यह भी सिद्धान्त प्रतिपादक पच्चीस श्लोकों का ग्रन्थ है। इस पर श्रुतिसिद्धान्तमञ्जरी, श्रुत्यन्तकल्पल्ली आदि टीकायें हैं। इनके अतिरिक्त कध्वमुखमर्दन, वेदान्त तत्त्वबोध, वेदान्त सिद्धान्त प्रदीप और स्वधर्माध्वबोध आदि ग्रन्थ भी निम्बार्क के हैं।

निम्बार्काचार्य द्वैत और अद्वैत दोनों को सत्य और श्रुतिमूलक मानते हैं। "तुल्यश्च साम्प्रदायिकम्" अर्थात् परम्परा से सभी श्रुतियां समान हैं, इस न्याय से द्वैत प्रतिपादक और अद्वैत प्रतिपादक सभी श्रुतियां समान हैं। अतः केवल अद्वैत को मान कर द्वैत का निराकरण ठीक नहीं तथा द्वैत को ही मानकर अद्वैत का निराकरण भी उचित नहीं। निम्बार्क के अनुसार दोनों को मानना समन्वय की दृष्टि से आवश्यक है। यदि केवल एक ही को स्वीकार किया जाय तो दूसरे की व्याख्या नहीं हो पाती । अतः निम्बार्क के अनुसार द्वैताद्वैत ही समीचीन सिद्धान्त है; क्योंकि इससे दोनों का समन्वय या सामञ्जस्य सम्भव है ।

**ईश्वर-**

निम्बार्क शंकर के निर्गुण ब्रह्म को नहीं स्वीकार करते। निम्बार्क का ब्रह्म सगुण, सविशेष ईश्वर है या परमात्मा है। परमात्मा कल्याण-धाम है। परमात्मा की सत्ता समस्त जीव और जगत में व्याप्त है। वही जगत का नियन्ता है। प्रलय परमात्मा में रहता है। पुनः सर्वशक्तिमान परमात्मा इनसे सृष्टि करता है। परमात्मा के लिए प्रकृति की आवश्यकता नहीं, वह सम्पूर्ण जगत को अपनी शक्ति से उत्पन्न करता है। जगत परमात्मा की शक्ति का परिणाम है। निम्बार्क भी परिणामवादी हैं।

निम्बार्क ब्रह्म को रामानुज के समान सगुण, सविशेष मानते हैं। उनके मत में श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं जो सभी गुणों के निधान हैं। श्रीकृष्ण की आद्य-सहधर्मिणी राधा हैं। श्रीकृष्ण सभी प्राकृत दोषों से रहित हैं, अर्थात् अविद्या दोष उनमें नहीं हैं। ब्रह्म स्वयं अपनी इच्छा से चतुर्व्यूह रूप में प्रकट होता है इत्यादि। निम्बार्क का ईश्वर विचार प्रायः रामानुजाचार्य के समान ही है। रामानुज के समान निम्बार्क भी सगुण ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करते हैं। दोनों ही ईश्वर को अनन्त गुणों का धाम मानते हैं और ईश्वर को जगत का उपादान और निमित्त दोनों स्वीकार

करते हैं। जीव के सम्बन्ध में प्रायः दोनों के विचार समान हैं। रामानुज और निम्बार्क दोनों ही जीव को अणु परिमाण मानते हैं; जीव कर्त्ता है, भोक्ता है, इत्यादि। जीव अंश है, ईश्वर अंशी है। ईश्वर सर्वशक्ति सम्पन्न है और जीव सीमित है। प्रत्येक शरीर में जीव भिन्न-भिन्न है; अतः अनन्त है। जीव ब्रह्म स्वरूप है। जीव का शरीर से संयोग-वियोग होता है। जीव और ईश्वर के सम्बन्ध में रामानुज और निम्बार्क में भेद है। रामानुज जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध की 'अपृथक् सिद्धि' बतलाते हैं। निम्बार्क के अनुसार यह सम्बन्ध भेदाभेदात्मक है।

निम्बार्काचार्य भी रामानुजाचार्य के समान चित्, अचित् और ईश्वर को तत्व मानते हैं। परन्तु रामानुज के अनुसार चित् और अचित् विशेषण हैं और ईश्वर विशेष्य हैं। निम्बार्क इस विशेषण-विशेष्य सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार चित और अचित आश्रित हैं और ईश्वर इनका आश्रय है। स्पष्ट है कि विशेष्य-विशेषण के स्थान पर निम्बार्काचार्य आश्रय-आश्रित सम्बन्ध मानते हैं। आश्रय और आश्रित सम्बन्ध के कारण ईश्वर और जीव में भेद और अभेद दोनों ही हैं। आश्रित आश्रय के बिना नहीं रह सकता, अतः चित, अचित और ईश्वर में अभेद है। साथ ही साथ दोनों में भेद भी है। ईश्वर पूर्ण चेतन है, सर्वज्ञ है परन्तु जीव और जगत नहीं। ईश्वर कल्याण-धाम है, परन्तु जीव और जगत नहीं।

जीव कर्त्ता है, परन्तु उसका कर्तृत्व ईश्वर के अधीन है। जीव भोक्ता है, परन्तु उसका भोक्तृत्व परमात्मा के अधीन है। निम्बार्क भी रामानुज के समान अनन्त जीव स्वीकार करते हैं। जीव दो प्रकार का है- बद्ध और मुक्त । बद्ध जीव पुनः दो प्रकार का है- मुमुक्षु और बुभुक्षु। मुमुक्षु मोक्ष की इच्छा रखने वाला है और बुभुक्षु सांसारिक भोग का इच्छुक है। मुक्त जीव भी दो प्रकार का है- नित्य मुक्त और मुक्त। नित्य मुक्त परमात्मा के साथ रहकर परमानन्द प्राप्त करता है। मुक्त जीव साधना से संसार बन्धन से मुक्त होते हैं। मुक्ति परमात्मा की कृपा से ही मिल सकती है।

ईश्वर और जीव के अतिरिक्त जड़ तत्व को भी निम्बार्क रामानुज के समान सत्य मानते हैं। जड़-तत्व चेतनाविहीन है या अचेतन है। अचेतन तत्व तीन हैं : अप्राकृत, प्राकृत और काल। उपनिषद् में इसी को माया या प्रधान आदि कहा गया है। महत् से लेकर महाभूत तक सभी प्रकृति-प्रसूत तत्वों को प्राकृत कहा गया है। अप्राकृत वे हैं जिनका प्रकृति से कोई सम्बन्ध नहीं, जैसे ईश्वर, लोक, परमव्योमन, विष्णुपद, परम आदि । काल शाश्वत तत्व है तथा संसार के प्रत्येक वस्तु के प्रति कारण है। कालस्वरूपतः नित्य है, परन्तु कार्यतः अनित्य है। काल का कार्य औपाधिक है। सूर्य की परिभ्रमण रूप क्रिया ही काल के लिए उपाधि है।

जीव, ईश्वर और जगत का पारस्परिक सम्बन्ध भेदाभेदात्मक या भिन्ना-भिन्नात्मक है। यदि तीनों को एक ही मान लिया जाय तो अनेकता प्रतिपादन करने वाली श्रुतियाँ व्यर्थ सिद्ध होंगी। यदि तीनों को भिन्न ही मान लिया जाय तो एकत्व प्रतिपादक श्रुतियों का कोई अर्थ नहीं। अतः ब्रह्म जीव और जगत में भेदाभेदात्मक सम्बन्ध है।

प्रस्तुति- **पं. चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी**

अध्यक्ष-'मानस समाज' श्री सत्यनारायण सत्संग समिति, सीपरी बाजार, झाँसी।

# विकार मुक्त जीवन

प्रारब्ध एवं संचित कर्म इस पंच तत्त्वीय स्थूल शरीर से प्राण निकलने के उपरांत भी सूक्ष्म शरीर में सन्निहित ही बने रहते हैं। परब्रह्म की व्यवस्था अनुरूप इन्हीं अच्छे-बुरे कर्मों के वशीभूत होकर जीव के रूप में बार-बार जन्म लेते रहना पड़ता है। पूर्व में किए गये कर्मों के फलस्वरूप ही सूक्ष्म शरीर को परिवार, वर्ण एवं धनादि के साथ संसार में स्थूल शरीर मिलता है। जिसके द्वारा उसे जन्म-जन्मान्तर के अभुक्त कर्मों को संसार में आकर सुख-दुःख के रूप में भोगना पड़ता है।

जीव ने पूर्व जन्म की अतृप्त इच्छाओ से सृजित वासनाओं के कारण ही जगत को धारण किया। संसार में अव्यक्त से व्यक्त होने पर यह तत्व यानि समष्टि रूपी बुद्धि आते ही, अहंकार के साथ धीरे-धीरे सारे जगत का पसारा दिखने लगता है।

संसार में जीव के आते ही शनैः-शनैः विकारों की उत्पत्ति उसमें दिखने लगती है। सीधी सी बात है कि जीव ने अहं के कारण ही जगत को धारण किया, यानि उसने जन्म लिया।

जीव को संसार में आते हुए देखें तो वह पूर्णतः निश्छल प्रतीत होता है किन्तु हमें ज्ञात नहीं हो पाता कि यह तत्त्व के साथ-साथ अल्पांश में ही सही अहं तत्त्व का अंकुरण अहंकार के रूप में आने लगता है।

शिशु को भी स्वयं को महत्व मिलने की स्थिति एवं प्रशंसा प्राप्त होने पर उसे अच्छा लगता है। विचार करें कि जब हम उससे कहते हैं कि तुम अच्छे हो या तुम बहुत अचछे लग रहे हो। इन्हें शब्द में तो हम बोलते हैं किन्तु जानते हैं कि वह छोटा बच्चा शब्द को न ही जानता है और न ही कुछ कह पाता है। इसलिए अपनी बात कहने के साथ-साथ ही हमारे मुख की आकृति अभिव्यक्ति (एक्सप्रेशन) स्वतः ही वैसी हो जाती है, जिसे बालक बुद्धि ग्राह्य कर लेता है। तज्जनित हम पाते हैं कि शिशु मुख पर प्रसन्नता का भाव दिखने लगता है। जो उसे महत्वपूर्ण या विशेष बनाकर उसके अन्दर प्रशंसा सुनने की अभिलाषा की प्रारंभिक अवस्था होती है, वही उसमें अहं के अंकुरण का हेतु होता है। वहीं अगर आप शिशु की उपेक्षा करते हैं, उसको डांटते हैं या आंखें दिखाते हैं तब आप उसके मुख पर प्रसन्नता के भाव नहीं देख पायेंगे। यानि यह स्थिति उसके अहं को पुष्ट करने में सहायक नहीं है। एक अन्य दृष्टांत पर जा सकते हैं, आप अपने शिशु के समक्ष किसी भी अन्य शिशु को दुलार करने लगें या उसे गोद में उठा लें तब आप निश्चित रूप से पायेंगे कि आपका शिशु रोने लगेगा या प्रतिशोध व्यक्त करेगा कि आप किसी अन्य को दुलार न करें। यहाँ से उसमें क्रोध का उदय मानें। उसके ऊपर ही ध्यान केन्द्रित रखें। यह अवस्था कुछ माह के शिशु में ही पा सकते हैं। यानि उसके अहं को कहीं न कहीं चोट पहुँच रही है और वह चाहता है कि उसकी उपेक्षा न की जाए। अन्य शिशु को आपसे दूर कराने का भाव जो आपके शिशु में आता है वही उसमें द्वेष विकार वृत्ति के भाव का उदय करता है। इसी प्रकार आप पायेंगे कि चाहने पर छोटे शशु को उसका प्रिय कुछ नहीं देते तो वह रोने

लगता है। वहीं शिशु का प्रिय आप उसे कुछ दे देते हैं, तो उसे प्रसन्नता होती है और वह वस्तु शिशु आपको फिर नहीं देना चाहता। यहाँ से उसमें चीजों के प्रति लोभ–लालच का प्रस्फुटन प्रारम्भ होने लगता है।

बचपन निश्छलता का प्रतीक अवश्य है अगर उसे कुछ रुष्टता भी होती है तो वह क्षणिक होती है, शीघ्र ही उसका मन शान्त होकर निश्छल प्रेम से ओत–प्रोत बना रहता है।

तात्पर्य सीधा सा है कि जीव जगत में आते ही अहं (अहंकार), द्वेष, लोभ–लालच, क्रोध आदि विकारों से शनैः शनैः ग्रसित होने लगता है। इनकी जड़ें उसके बड़े होते–होते और भी गहरी होती जाती हैं। बहुत सारे विकारों से मन भर जाता है। काम वासनाओं के बढ़ जाने से हम दूसरों से अपेक्षा करने लगते हैं।

जीवन में अनुकूल स्थितियाँ तो मन को प्रफुल्लित करती ही हैं, वहीं प्रकूल स्थितियाँ कभी–कभी मन में प्रतिकार स्वरूप घातक स्थितियाँ भी उत्पन्न कर देती हैं, परिणामस्वरूप मन को अशान्त कर देती हैं।

प्रतिकूल अवस्था भी सहजता से निकल जाये, इसके लिए चिंतन आवश्यक है। हाँ, इतना अवश्य ही सौभाग्य समझें कि मनुष्य जन्म लेने पर आप चाहें तो अपना आगत भी ईश्वर प्रदत्त विवेक बुद्धि से संवार सकते हैं। पूर्वकृत कर्मों से वर्तमान जीवन में सुख एवं कष्टादि दुःख तो मिलेंगे ही, किसी भी अवस्था में उनके भोगने से नहीं बचा जा सकता है। सुख प्राप्त होने पर अहंकार रूपी विकार के मद में पुनः गलत कर्म नहीं करते हुए, विचार करना चाहिए कि यह सुख सदा रहने वाला नहीं है। दुःख को भी अपने प्रारब्ध कर्मों के प्रतिफल स्वरूप जानकर आत्म तत्त्व में स्थित होने पर, वह दुःख जीवन में आते तो अवश्य ही रहेंगे परन्तु वे हमें विशेष प्रभावित किये बिना सहजता से निकल भी जायेंगे।

जीवन में जब कर्मों को कर्तव्य पूर्वक यानि मैं कर रहा हूँ के साथ किया जाता है तब निश्चित रूप से पुण्य–पाप होता है, पुनः जन्म लेकर प्रति फलस्वरूप सुख–दुःख को आगे भोगना ही पड़ता है। जन्म लेते ही पुनः विकारों की श्रृंखला प्रारम्भ हो जाती है परन्तु विवेक बुद्धि से विचार करते हुए कर्मों को कर्तृत्व पूर्वक नहीं करते हैं यानि मैं नहीं कर रहा हूँ भाव के साथ जीवन में किये जाने पर, पुण्य–पाप नहीं होता जिससे उनके प्रतिफल से बच जाते हैं। कर्मों को कर्तृत्व पूर्वक नहीं करने से शरीर द्वारा विकारों का होना रुक जाता है और वासनाएँ भी नहीं रह जातीं। आत्म तत्त्व में स्थित होने पर स्थूल शरीर द्वारा सारे कर्म तो किये जाते हैं किन्तु वह कर्तृत्व पूर्वक नहीं होने से, शरीर दोष मुक्त जीवन जीता है।

पंच भौतिक इस स्थूल शरीर से प्राण शक्ति निकल जाने के बाद सूक्ष्म शरीर में कोई वासना ही संग्रहीत न होने के कारण "पुनरपि जननं, पुनरपि मरणं" का क्रम रुक जाता है।

**– प्रमोद कुमार गुप्ता**
झाँसी

# आत्मा की खोज ही गीता है

आत्मा ही वह दिव्यमणि (जीवन का मूल तत्त्व) है, जिसके प्रकाश में संसार की अविद्या का समूल नाश हो जाता है।

मनुष्य तन से पशु, मन से मनुष्य और आत्मा से ईश्वर है। यह संसार हमारी ईश्वरीय सत्ता द्वारा हमारे अपने ही महान् चित्त की समय, स्पेस और पदार्थ की चतुर्भायामी कल्पना का कमाल है, जिसमें हम अपने शरीर द्वारा प्रवेश करके इन्द्रियों और मन के द्वारा इसे भोगना चाहते हैं। इसी को हमारे शास्त्रों में **'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'** अर्थात् 'स्वयं रचकर स्वयं ही इसमें प्रवेश कर जाना' कहा है। शरीर रूप में हममें अहं आ जाना स्वाभाविक है और मन है तो मोह में तो हम पड़ ही जाते हैं। फलतः संसार हमें सत्य लगने लग जाता है और आँख से आत्मा नहीं दिखने से हमारा मन स्वतः ही पशु भाव में चला जाता है। हमें लगता है हमारा तन है, मन है और संसार तो है। लेकिन आत्मा के अस्तित्व के बारे में हम संशय में पड़ जाते हैं। आत्मा की विस्मृति हो जाने से हम जन्मते–मरते रहते हैं और अनन्त काल तक संसार में ही पड़े रहते हैं। बाहर निकल नहीं पाते। हमें संसार का निर्गम ही नहीं मिलता। अतः अब सबसे बड़ा प्रश्न हमारे सामने यह उपस्थित हो जाता है कि यदि आत्मा है तो वह कहाँ गयी। गीता कहती है कि आत्मा मरती नहीं है– **'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः'** आदि– आदि। इसलिये गीता उस आत्मा की खोज में लग जाती है और आप गीता पढ़ेंगे तो पायेंगे कि गीता अपने मिशन में सफल हो जाती है।

काल (समय), स्पेस और पदार्थ– ये तीनों इतने भारी भ्रम हैं, जिनमें से हमारी सोच बाहर निकल हो नहीं पाती है। तुलसीदासजी ने इस भ्रम को पहचाना, इसलिये रामचरितमानस में उत्तरकाण्ड में भगवान् राम काकभुशुण्डिजी के सामने अपनी इस माया का बहुत रोचक ढंग से संवरण (निराकरण) करते हैं। काकभुशुण्डिजी देखते हैं कि विराट् स्पेस सिर्फ और सिर्फ दो अंगुल की दूरी में सिमटकर रह जाता है, सृष्टि का सारा–का–सारा पदार्थ काकभुशुण्डिजी सहित भगवान् के मुँह में समा जाता है और यह देखकर तो वे अत्यन्त आश्चर्य में पड़ जाते हैं कि उनके स्वयं के द्वारा अनन्त काल का बिताया हुआ समय केवल कुछ पल में ही घंटा हुआ दिख जाता है।

पिछली सदी में आईन्स्टाइन ने प्रकाश को गति पर भिन्न–भिन्न प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया कि समय और स्पेस निरपेक्ष (Absolute) सत्य नहीं है, बल्कि सापेक्ष (Relative) सत्य हैं यानी सिकुड़ या फैल सकते हैं तथा पदार्थ भी सिर्फ एनर्जी (शक्ति) का पुंज मात्र है। इन दोनों अर्थात् काकभुशुण्डि आख्यान और आधुनिक विज्ञान दोनों से यह सिद्ध होता है कि संसार के तीनों ही घटक समय, स्पेस और पदार्थ असत्य होते हुए भी हमें इसलिये सत्य प्रतीत होते हैं क्योंकि हमें अपने शरीर और इन्द्रियों से इनका अनुभव होता है। इसलिये आत्मा जिसमें न स्पेस है, न समय है, न पदार्थ है, सत्य होते हुए भी हमें सत्य प्रतीत नहीं होती। आत्मा का यह अदृश्य 'सत्य' हमें कैसे दिखायी दे, इसी समस्या का हल गोता है।

विज्ञान की नवीनतम खोजों से हमें अवगत कराने के लिये संसार के विभिन्न देशों में TED सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं। ऐसे ही एक सम्मेलन में मेडिकल साइंस के एक खोज कर्ता ने बताया कि ऑपरेशन करने के पहले मरीज को जो एनेस्थिसिया दी जाती है, वह दिमाग को निश्चेष्ट नहीं करती, बल्कि दिमाग में एक ऐसा मूक शोर (Silent Neise) मचा देती है, जिसमें दिमाग इतना व्यस्त हो जाता है कि शरीर की सुधि ही 'भूल' जाता है। और तब डॉक्टर आराम से ऑपरेशन कर देता है।

ठीक इसी प्रकार दृश्य संसार को हो सत्य मानकर हम उसमें डूब गये हैं। इसलिये अपनी ही आत्मा को बिलकुल 'भूल' गये हैं। क्या आत्मा की यह प्रतिध्वनि गीता के इस श्लोक में सुनायी नहीं देती–

**या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।**
**यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।**

सिर्फ इन दो पंक्तियों का अर्थ हम समझ जायें तो पूरी गीता समझ में आ जाएगी। प्रथम पंक्ति 'वैराग्य' और दूसरी पंक्ति 'ज्ञान' की है। जबकि शास्त्रों में 'ज्ञान' पहले आता है और 'वैराग्य' बाद में। लेकिन यहाँ ठीक उल्टा है, क्योंकि भगवान् पहले हमें हमारी आत्मा को संयम यानि वैराग्य द्वारा जगाये रखने की बात करते हैं कि औरों की देखा–देखी तुम भी मत सो जाना और उसके बाद मुनियों के दृष्टान्त से यह ज्ञान भी दे देते हैं कि जिस संसारिकता में दुनिया वाले जगे हुए हैं उसकी तरफ से अपनी आंखें बन्द रखो, वह तो वास्तव में घोर रात्रि है। इस प्रकार गीता को शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। गीता को तो सिर्फ हमारा दृष्टिकोण सही करना है, जिसमें 'आत्मा' हमारे 'ध्यान' में आ जाए। संसार को पूर्ण रूप से (या आंशिक रूप से ही) मिटा देनना हम जैसे क्षुद्र जीव के वश की बात नहीं है। लेकिन गीता हमारे दृष्टिकोण को सही कर देती है। हमारे बुद्धि के टेलिस्कोप को घुमाकर उस कोण पर स्थित कर देती है जिसमें संसार तो बिल्कुल मिट जाता है लेकिन आत्मा फोकस में आ जाती है।

अतः यह 'आत्मतत्त्व' जिसको आज हम भूल गये हैं, उसकी याद दिलाना ही गीता का मूल उद्देश्य है। गीता, यद्यपि ज्ञान का अथाह सागर है लेकिन गीता का मूल उद्देश्य ज्ञान देना नहीं बल्कि अर्जुन ही नहीं, जन–जन को आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव कराना है। इसलिये भगवान् ने ज्ञान नहीं बल्कि 'ज्ञानयोग', कर्म नहीं बल्कि 'कर्मयोग' तथा ज्ञान और कर्म दोनों की पराकाष्ठा 'भक्तियोग' पर सबसे ज्यादा जोर दिया है।

ज्ञान और अज्ञान दोनों से मुक्त हुए बिना 'आत्मा' का दर्शन नहीं हो सकता, क्योंकि आत्मा सारे बन्धनों से मुक्त है। इसलिये शास्त्रों का ज्ञान कितना भी हो जाए, उससे आत्मा का ज्ञान कभी नहीं हो सकता, क्योंकि ब्रह्म के ज्ञान की तुलना में हमारा ज्ञान सदा अपूर्ण, नगण्य और तुच्छ ही नहीं बल्कि जड़ता है। अतः उसे तज देने में ही भलाई है। उससे चेतन आत्मा का ज्ञान कभी नहीं हो सकता है। दूसरे यदि शास्त्रों के ज्ञान से ही आत्मा का ज्ञान होता हो तो मूर्ख को तो कभी आत्मा का ज्ञान नहीं होगा जबकि आत्मा तो ज्ञानी और मूर्ख दोनों में है। ज्ञानी हो या मूर्ख, निर्बल हो या बलवान, आस्तिक हो या नास्तिक गीता सबके लिए है। इसीलिये आत्म ज्ञान की दिशा में अग्रसर होने में भगवान् ने वेदों के ज्ञान को भी आधा बताया है– 'त्रैगुण्यविषया वेदा निम्बैगुण्यो भवार्जुन।' यह वेदों की अवमानना नहीं है, बल्कि वेदों की सबसे बड़ी प्रशंसा है। यह इस बात का प्रमाण है कि वेदों से बढ़ कर कोई ज्ञान नहीं है। यदि वेदों से बड़ा कोई ज्ञान–शास्त्र होता तो भगवान उसी शास्त्र का नाम लेते, वेदों का नाम नहीं लेते। क्योंकि भगवान् का तात्पर्य यहाँ 'बड़े–से–बड़े ज्ञान' से है। महान ज्ञान के पर्याय चूंकि वेद हैं, इसलिए वेदों का उदाहरण दिया है।

ज्ञान के कांटे से अज्ञान के कांटे (यानि संशय) को निकाल देने के बाद ज्ञान और अज्ञान दोनों कांटों को फेंक देना चाहिए। ज्ञान के कांटे को सहेजकर रख लेने से मन सदा असहज ही रहता है। अतः अपनी सहज अवस्था यानि आत्म स्वरूप की प्राप्ति नहीं हो सकती।

स्वस्थ शरीर, सही सोच और निर्मल मन में ही आत्मा की अनुभूति जागती है। अर्जुन का शरीर स्वस्थ था, मन निर्मल था, लेकिन सोच सही नहीं थी। उसके सोच को सही दिशा में ले जाने का उपक्रम ही गीता है, जो अर्जुन ही नहीं हर युग में हर व्यक्ति की सोच सही दिशा में ले जाने में सक्षम है। इसीलिए गीता मनुष्य की शाश्वत् मित्र है।

हर नकारात्मक विचार को निरस्त करना और हर सकारात्मक विचार को प्रशस्त करना गीता का स्वभाविक गुणधर्म है। गीताजी में भगवान् स्वयं बैठकर ज्ञान दे रहे हैं। इसलिये गीता में अनन्त ज्ञान है। जिसका कोई पार नहीं पा सकता। पिछले पांच हजार वर्षों में अेनक सन्त और विद्वानों ने जीवन भर गीता जी का अध्ययन किया लेकिन गीता के ज्ञान का अन्त नहीं पा सके। गीता रूपी नाव में बैठकर वे निस्सन्देह भवसागर तर गये, क्योंकि वह बुद्धि धन्य है जो ईश्वर के ध्यान में सतत् लगी हुई है। भगवान् स्वयं ऐसे ज्ञानियों को अपना ही स्वरूप मानकर उनकी अभ्यर्थना करते हैं। लेकिन गीता का करिश्मा, गीताजी का सत्त्व, गका सहज और सत्वर ज्ञान(Spentaneeous Knowledge) है जो अर्जुन के बहाने हमें कह रहा है कि तपस्वी से श्रेष्ठ कर्मठ व्यक्ति होता है, कर्मठ से श्रेष्ठ ज्ञानी होता है और ज्ञानी से श्रेष्ठ योगी होता है। अतः तू योगी बन।

युद्ध छिड़ने के ठीक पहले कोई भी विवेकवान् व्यक्ति ज्ञान की पाठशाला गोलकर नहीं बैठेगा। अतः भगवान् का (तात्कालीक) उद्देश्य सिर्फ अर्जुन को यह याद दिलाना था कि तुम वह नहीं हो जो तुम सोचते हो। ये योद्धागण भी वह नहीं हैं, जो तुम इनको समझ बैठे हो। भगवान् चाहते थे कि किसी भी तरह जल्द-से-जल्द अर्जुन को अपने असली स्वरूप, अपनी आत्मा का पता चल जाय ताकि वह निर्द्वन्द भाव से लड़ सके और दैववश धर्मयुद्ध के बहाने से ही सही एक ही जगह युद्ध की इच्छा से ही एकत्र हुए (समवेता युयुत्सवः) आततायियों का थोक भाव में नाश हो जाए। अर्जुन में जब तक देहबुद्धि थी, तब तक वह अपने आपको, भीष्म, द्रोण आदि को, यहाँ तक कि भगवान् कृष्ण को भी देह तक ही सीमित समझे हुए था। आत्म चेतना के आते ही वह अपनी भूल के लिए भगवान् से क्षमा माँगने लगता है कि मैं आज तक आपको साधारण सखा समझकर व्यवहार करता रहा, लेकिन आप तो परमपुरुष हो। आत्मा का ज्ञान नहीं रहने से ही हमारे हृदय में ईश्वर के प्रति मूढ़ भाव रहता है। आत्मा का अनुभव होते ही हमारे हृदय में ईश्वर चेतना (God Consciousness) जाग्रत् हो जाती है। जैसे कितना ही घना कोहरा हो, लेकिन सूर्य की एक किरण दिखते ही सूर्य हमें पूरा-का-पूरा दिख जाता है।

गीता कोरा दर्शन नहीं है, बल्कि मानवमात्र के कल्याण में रत (सर्वभूतहिते रतः) उद्देश्य परक, व्यवहारिक चिन्तन है। जिसको हम अंग्रेजी में ऑब्जेक्टिव थिंकिंग (Objective Thinking) कह सकते हैं।

अव्यक्त आत्मा के व्यक्त करने की मनोवैज्ञानिक विधि ही गीता है। अन्तर्यामी प्रभु पहले तो अर्जुन के रथ को भीष्म और द्रोणाचार्य के ठीक सम्मुख ले जाकर जानबूझकर अर्जुन की भावना भड़काते हैं और जब अर्जुन मन, बुद्धि और शरीर से हार मानकर बैठ जाता है तो भगवान् मुस्कराकर अत्यन्त द्रुत गति से उसकी आत्मा का रहस्य बतलाना प्रारम्भ कर देते हैं और उसकी सारी जिज्ञासाओं का युक्तिसंगत समाधान करते हुए छठे अध्याय तक उसकी आत्मा का पूरा-का-पूरा रहस्य और आत्मा को जानने की योग-विधि समझाकर आत्मा को जानने का अनुपम फल बतला देते हैं। जब तक हमारे मन, बुद्धि और शरीर में से एक भी काम करता रहता है, तब तक हमें आत्मा की जरूरत ही नहीं पड़ती। जब ये तीनों फेल हो जाते हैं, तभी आत्मा का रोल शुरू होता है। मनुष्य मरने के लिए पैदा नहीं हुआ है, संसार-सागर पार करने के लिए पैदा हुआ है। मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है। यदि जीते-जी आत्मा को नहीं जान पाये, तो हम 'आत्महनन' की ओर बढ़ जाते हैं-

**जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।**
**सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥**

हम सब आज जाने-अनजाने इसी 'आत्महनन' की प्रक्रिया में लगे हुए हैं।

मनुष्य मात्र की कामयाबी का रहस्य आत्मा में निहित है। यह रहस्य गीता हमें बतलाती है। लेकिन आज हम पुनः आत्मा को बिलकुल भूल बैठे हैं। शरीर को ही सब कुछ समझे हुए हैं। विज्ञान ने भोगों के प्रचुर साधन सुलभ कर दिए हैं। लोगों में भोगों को भोगने की होड़ मच गयी है। विज्ञान के विकास ने आत्मा के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया है। संसार में अनात्मवाद बढ़ गया है। अनात्मवाद बढ़ने से अनीश्वरवाद बढ़ गया है। अनीश्वरवाद से अनाचार बढ़ गया है। जिसमें कदाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार आदि सब जायज है। दिशाहीन युवापीढ़ी की असीम ऊर्जा का कुछ निहित स्वार्थों ने गलत उपयोग करके उन्हें आतंकवाद की तरफ मोड़ दिया है। मनुष्य पशु बन गया है। ऐसा नहीं है कि पशु में आत्मा नहीं रहती, आत्मा पशु की भी होती है, लेकिन पशु का अपनी आत्मा का पता तब चलता है, जब वह मर जाता है। तब उसके पास दूसरा जन्म लेने के सिवाय कोई चारा नहीं रहता है। लेकिन मनुष्य को अपनी आत्मा का पता जीते जी भी लग सकता है। यदि जीते जी मनुष्य को अपनी आत्मा का पता चल जाय तो मनुष्य मरता नहीं है सिर्फ शरीर छोड़ता है। शरीर में रहते हुए प्राण छोड़ने को हम मरना कहते हैं, जिसमें मर्मान्तक पीड़ा होती है, क्योंकि मन शरीर छोड़ना नहीं चाहता, लेकिन आत्मा में रहकर शरीर छोड़ने को हम 'मुक्ति' का नाम देते हैं। मृत्यु नहीं कह सकते, क्योंकि फिर उसे दूसरा जन्म नहीं लेना पड़ता, लेकिन संसार के भोगों में मनुष्य को इतना रस मिलने लगा है कि उसके लिये वह कुछ भी करने के लिये तैयार है, यहाँ तक कि मरने-मारने के लिये भी तैयार है। हमारा मन भोगों में इतना रम गया है कि हमें आत्मा की बात ही नहीं सुहाती। अतः गीता को पढ़ने की कौन कहे, गीता के ऊपर नजर भी पड़ जाती है तो हम अपनी नजर फेर लेते हैं कि यह तो ज्ञान की पुस्तक है, हमारे किस काम की। लेकिन गीता कोरे ज्ञान की पुस्तक नहीं, हमारी आत्मा का विज्ञान है। गीता इतनी निर्दोष है कि हमें आत्मा का 'सत्य' सिर्फ दिखाती है, हम पर आरोपित बिलकुल भी नहीं करती। आत्मा अपदार्थ है, इसलिये दिख जाय यही पर्याप्त है, आरोपित करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। तभी तो अन्त में अर्जुन को कह दिया **'यथेच्छसि तथा कुरु'**। आत्म तत्त्व की खोज और उसे मनुष्य मात्र को दिखा देना- यह श्रीमद्भगवद्गीता की कृपा है।

संकलन- **अरविन्द देवलिया**

# आनंदमय जीवन की नींव

जहाँ प्रेम होता है वहाँ परमात्मा भी जीव के बस में हो जाते हैं। प्रेम में अद्भुत सामर्थ्य है। चाहे केवट के आगे हो, चाहे शबरी के आगे हो, चाहे हनुमानजी के आगे वो, चाहे सुग्रीव के आगे हो या चाहे विभीषण के आगे हो। प्रेम के वशीभूत होकर कितनी ही बार उन प्रभु को झुकते देखा गया है। प्रभु प्रेम में झुके हैं इसलिए जो प्रेम स्वयं भगवान को झुका सकता है, वह इंसान को भी अवश्य झुका सकता है।

यदि आप दूसरों से प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं तो आप उनके हृदय पर अपना आधिपत्य भी जमा लेते हैं। किसी को जीतना चाहते हैं तो प्रेम से जीतो। बल के प्रयोग से तो किसी-किसी को ही जीता जा सकता है लेकिन प्रेम द्वारा सबको जीता जा सकता है। प्रेम वो शहद है जो संबंधों को मधुर बनाता है। मधुर संबंध पारिवारिक खुशहाली को जन्म देते हैं और पारिवारिक खुशहाली ही तो एक सफल एवं आनंदमय जीवन की नींव है।

# भगवान शंकर की महिमा

शिव पुराण के अनुसार भगवान शिव को स्वयंभू माना गया है। यानि उनका जन्म नहीं हुआ और वे अनादिकाल से सृष्टि में हैं। भगवान शिव को आदिदेव भी कहा जाता है अर्थात् हिन्दू दर्शन (माइथोलॉजी) में से सबसे पुराने देव हैं। भगवान शिव और उनमें विशिष्ट गुणों के प्रतीकार्य पर अब विचार करेंगे। शिवजी को संहार का देवता कहा जाता है। शंकर जी सौम्य आकृति एवं रौद्र रूप दोनों के लिए विख्यात हैं।

हमारा चित्त निरन्तर, सहज रूप से कुछ न कुछ रचना करने और कुछ न कुछ करने से सम्बन्धित विचारों को प्रश्रय देता रहता है। अपने मन में विचारों की सृष्ट करने में हमें कोई कठिनाई नहीं होती, मुश्किल बस यह है कि हम उन विचारों को सुरक्षित रखना और ठीक से नष्ट करना नहीं जानते। उदाहरण के लिए यह विचार कि मैं एक कार खरीद लूँ, या मैं एक मकान खरीद लूँ, बड़ी सरलता से उत्पन्न हो जाता है लेकिन इस प्रकार के विचारों को मन में देर तक रखने की शक्ति हममें नहीं होती, जिससे कि हम अपनी मनोवांछित वस्तु को प्राप्त कर सकें। हम किसी सात्विक विचार को, जब वह उत्पन्न होता है, अपने चिक्का में ठीक से धारण किए रखना नहीं जानते। दूसरे शब्दों में कहें तो विचारों का सृजन सहजन और प्राकृतिक है लेकिन उन विचारों को सुरक्षित रखना, उनको पोषित करना और उनको विनष्ट करना बहुत कठिन काम है।

जो विचार हमारे भीतर उत्पन्न होते रहते हैं, जरूरी होने पर उनसे छुट्टी पाना भी बड़ा मुश्किल है। अपने जीवन में हम लोग इतनी आसक्ति इतना मोह इकट्ठा कर लेते हैं कि स्वयं को बहुत असहाय महसूस (अनुभव) करने लगते हैं। कारण यह है कि इनसे हम मुक्त नहीं हो पाते। इसलिए हमें भीतर की संहारक शक्ति की आवश्यकता होती है।

यही कारण है कि हम भगवान शिव का आव्राहन करते हैं, जिससे कि हमें अपने मोह आदि अवांछित विचारों को नष्ट करने की शक्ति मिले। हमें भगवान विष्णु की कृपा और उनके अनुग्रह की भी आवश्यकता पड़ती है, जिससे कि हम अपने सद्विचारों को पोषित कर सकें और जब तक अपने लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर लेते तब तक स्थिर और सुरक्षित रख सकें। यही कारण है कि हमें भगवान विष्णु और भगवान शिव के अनेक मन्दिरों की आवश्यकता है।

शिव जी के अनेक रूप : जैसा कि पहले देखा, हिन्दू धर्म में प्रत्येक देवी और देवता या भगवान को कम से कम चार रूपों में समझा जा सकता है– 1) पूर्ण, 2) सर्वव्यापी, 3) अधिकारी, सृष्टि के किसी विशेष अंग के अधिकारी और 4) धर्म स्थापना हेतु पृथ्वी पर अवतार के रूप में।

भगवान शिव मूल रूप से निराकार हैं, अखंड हैं, पूर्ण सत्य हैं, विशुद्ध चैतन्य हैं। शिव के नाम का अर्थ है मंगलकारी। संस्कृत में उच्चारा की दृष्टि से इससे मिलता जुलता शब्द है–

शव। शव का अर्थ है मृत देह। शरीर स्वयं में जड़ है, एक शव है लेकिन प्राणों का संचार हो जाने पर उसमें जीवन का संचरण अर्थात् शिव का उसमें प्रवेश सम्पूर्ण देह को सौन्दर्य और पवित्रता प्रदान करता है। जिसके फलस्वरूप हममें प्रेम या स्नेह का भाव जागता है। आदर देने की सामर्थ्य हममें प्रकट होती है। यह दिव्य प्राकट्य विशुद्ध चैतन्य है। शिव है, मंगलमय है, यही हमारा अपना सच्चा स्वभाव है, स्वरूप है।

भगवान शिवजी का चिंतन काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह का नाश करने वाला है। मनुष्य उनके चिंतन से पृथ्वी पर सभी सुखों को भोग कर अन्त में शिवलोक का वासी होता है।

**ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीन उपबीत भुजंगा।।**
**गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव वेष सिवधाम कृपाला।।**

(रामचरित मानस, बालकाण्ड, दोहा संख्या- 92, चौपाई 3, 4)

शिवजी के सुंदर मस्तक पर चंद्रमा, सिर पर गंगा जी, तीन नेत्र, सांपों का जनेऊ, गले में विष और छाती पर नरमुण्डों की माला, इस प्रकार उनका यह वेश होने पर भी वे कल्याण के धाम और कृपालु हैं।

भगवान शिव! (जीव) के समस्त पापकर्म एवं तीन प्रकार के (दैहिक-दैविक-भौतिक) कष्टों का निवारण करने वाले हैं। जो देवताओं के गुरुजनों तक सर्वश्रेष्ठ देवों द्वारा पूज्यनीय हैं और जिनकी पूजा दिव्य उद्यानों के पुष्पों से की जाती है तथा जो परमब्रह्म हैं, जिनका न आदि है और न अन्त है, ऐसे अनन्त अविनाशी लिंगस्वरूप भगवान भोलेनाथ को मैं सदैव अपने हृदय में स्थित कर प्रणाम करती हूँ। *ॐ नमः शिवाय।*

**– डा. रंजना शर्मा**
नोएडा

---

# परोपकार

धन को व्यापार में लगा लें, उद्योग में लगा लें, जिससे रोजगार मिले और धन की वृद्धि हो, वह तो अच्छा है। अर्जित धन को शान-शौकत में या बुरे व्यसनों में लगा दें, वह उसका दुरुपयोग ही है। साथ ही धन को केवल जोड़कर इकट्ठा करके रखे रहें, यह अच्छी बात नहीं है। यह धन का दुरुपयोग ही है। हाँ, थोड़ा धन, बीमारी आदि के लिए अवश्य रखना चाहिए। किन्तु धन का संग्रह ही करते रहें यह अच्छा नहीं है।

धन का श्रेष्ठ उपयोग तो किसी जरूरतमंद की सहायता करना, दीन-दुःखी को मदद करके उनका दुःख-दर्द दूर करना ही है। धन कमाना अच्छी बात है किन्तु उसका उपयोग सही तरीके से करना विशेष महत्व की बात है।

**– जगदीश प्रसाद लिखधारी**
पूर्व शासकीय वरिष्ठ अधिवक्ता, झाँसी।

# किसकी पूजा होगी?

विगत दिनों पुष्कर राज तीर्थ की यात्रा की। पुष्कर अकेला एक ऐसा स्थान है जहां ब्रह्मा जी का मन्दिर है। सावित्री माता के श्राप के कारण ब्रह्मा जी का उनकी ही बनाई हुई सृष्टि में कहीं और पूजन नहीं होता। विचित्र बात है कि सृष्टि कर्ता ही अपूजनीय है। पुष्कर से आगे उदयपुर जाना हुआ। वहां से 35 किमी. दूर हल्दीघाटी क्षेत्र है, जहाँ महाराणा प्रताप ने युद्ध किया था। वहीं उनके स्वामी भक्त छोड़े चेतक की समाधि भी है। महाराणा प्रताप और चेतक को लोग पढ़ते हैं, सराहते हैं और अनुकरणीय मानते हैं। जहाँ एक ओर ब्रह्मा जी को पूजा भी नहीं जा रहा, वहीं दूसरी ओर महाराणा प्रताप को नमन करते हैं। क्या कारण है? एक व्यक्तित्व कैसे पूजनीय बनता है? क्या पुराण कुछ और कहना चाहते हैं?

ब्रह्मा जी, ब्रह्म स्वरूप ॐ के अकार का परिचायक हैं। अकार हमारी जागृत अवस्था अर्थात् मन की चेतन अवस्था का प्रतीक है। मन इतना क्षणिक है कि ठहरता नहीं, उचित का धैर्य उसमें नहीं। इस चंचलता के कारण वो अनुचित का ही क्षणिक चुनाव करता रहता है। जागृत अवस्था में हम अपने ही बनाए हुए संसार में उलझे रहते हैं, कभी अमुक वस्तु के पीछे तो कभी अमुक। और वस्तु मिल भी गई तो उसके संरक्षण के उपाय। ऐसे में अपने संकीर्ण संसार से परे देख पाना अत्यंत कठिन हो जाता है। इसलिए हम भी नहीं पूजे जाते। जैसे देह भाव से जिए, वैसे ही चले गए। जैसे देह मिट्टी, वैसे ही हमारा प्रभाव! जो अपने स्वरूप को वास्तव में जानने का प्रयास करता है, उसका शारीरिक देह भाव से परे उसका विस्तार करता है, उसके अनुरूप कार्य करता है, उसके अनुरूप ही जीवन–यापन करता है, त्याग करता है, तप करता है, वही पूजा जाता है। कैसा विस्तार? क्या आप शारीरिक आकार में बढ़ जाओगे? नहीं! आप जिसको मैं और मेरा मानते हो, वो विराट हो जाएगा। और जब ये संकीर्ण मैं और मेरे के बंधनों को तोड़ देगा, तो आप अमर और पूजनीय हो जाओगे।

**– शंकरदास**

---

# जीवन का सत्य

जीवन का बड़ा सच मृत्यु नहीं है, बड़ा सच है स्वयं को जीवित रखना, और उन सब को जीवन दान देना जो आप से उम्मीद रखते है।

मृत्यु अटल है, वो कभी टल नहीं सकती जो होना है वो तो होगा, किन्तु मरना एक दिन है जीवन की असली सच्चाई है जीवित रहना और स्वंय को खुश रखना।

यदि आप खुश नहीं हैं, आप की वजह से लोग खुश नहीं हैं तो आप जीवित में भी मृत है, मरता शरीर है आत्मा नहीं मरती। वो आपके कर्म के अनुसार कहीं भी जीवंत होगी, इसलिए ये मत सोचो कि एक दिन मरना है, बल्कि हर दिन ये सोचो कि मुझे कल भी जीवित रहना है।

जीवन का एक बड़ा उद्देश्य बनाए रखें, आप को आज खुश रहना है कल भी खुश रहना है, आपकी वजह से किसी को दुःख नहीं पहुंचे ये प्रयास निरन्तर करना है। आप खुश हैं तो निश्चित ईश्वर का वास आप में है, खुद को प्रेम करो, और ईश्वर रूपी विश्वास को हृदय में रखो।

# समर्थ होकर भी निन्दा का पात्र?

पृथ्वी लोक में मनुष्य का जीवन ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना है। परन्तु मानवता के शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या और द्वेष इन भावों ने मानव को मानवता से विमुख कर दिया है। किंकर्तव्यविमूढ़ मानव इन सातों शत्रुओं के हाथों की कठपुतली बना हुआ है और घोर पाप करता हुआ अपना जीवन दु:खों औ संतापों के बीच व्यतीत करता है। इसी सन्दर्भ में आज हम इस लेख में, स्कन्द पुराण से प्रेरित एक कथा प्रसंग पर प्रकाश डाल रहे हैं।

आप सभी को ज्ञातव्य होगा कि अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित पवित्र यश वाले, धर्मात्मा, विष्णु भक्त एवं महायोगी तथा चारों वर्णों की रक्षा करने वाले एक प्रतापी राजा थे। एक बार वे मृगया में अनुरक्त होकर जंगलों में घूम रहे थे। वे भूख और प्यास से बहुत अधिक व्याकुल अवस्था में घूमते हुए एक मुनि के पास पहुँचे। मुनि समाधिस्थ थे। राजा ने उनसे कहा, मुने! मैंने एक मृग को घायल किया है क्या वह यहाँ आया है? क्या आपने उसे देखा? मुनि ने कोई उत्तर नहीं दिया क्योंकि वो मौनव्रत में समाधि लगाए हुए थे। प्रश्न का उत्तर न मिलने पर राजा ने कुपित होकर एक मरे हुए साँप को मुनि के कन्धे पर रख दिया और चले गये।

मुनि का एक पुत्र था श्रृंगी और श्रृंगी का एक परम मित्र था कृष्ण। एक बार विवाद में कृष्ण ने कहा देखो तुम्हारे पिता एक मरा हुआ सर्प कन्धे पर ढो रहे हैं। श्रृंगी को बहुत क्रोध आया। वह पिता को उस अवस्था में देखकर क्रोधित हो गया और कुपित होकर उसने शाप दे डाला, "जिस मूढ़ बुद्धि ने मेरे पिता के कन्धों पर ये मृत सांप रखा है वह आज से सातवें दिन तक्षक नाग द्वारा डसने पर मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा।" इस प्रकार क्रोध के वशीभूत होकर बिना सोचे समझे श्रृंगी ने एक महान राजा उत्तरा नन्दन परीक्षित को शापग्रस्त कर दिया।

जब श्रृंगी के पिता शमीक मुनि को ये सब ज्ञातव्य हुआ तो वे बहुत दु:खी हुए और उन्होंने अपने पुत्र को बताया कि तूने क्रोध के वशीभूत होकर अनर्थ कर दिया है। क्रोध से पाप जन्म लेता है जबकि क्षमा से मनुष्य इहलोक और परलोक में भी उत्तम श्रेय प्राप्त करता है। तदुपरान्त शमीक मुनि ने दौर्मुख नामक शिष्य द्वारा राजा परीक्षित को अपने बेटे के द्वारा दिए गए शाप से अवगत कराया। राजा को अपने कृत्य पर महान ग्लानि हुई। उन्होंने उसी समय आदेश देकर ऊँचा एवं विस्तृत मण्डप बनवाया एवं भगवान विष्णु के प्रति भक्ति में रत होते हुए देवर्षि एवं महर्षियों के साथ वहाँ रहने लगे।

उसी अवसर पर मंत्र जानने वालों में श्रेष्ठ कश्यप नाम वाला ब्राह्मण तक्षक के महान विष से राजा की प्राण रक्षा करने के लिए सातवें दिन वहाँ जा रहा था। दरिद्र होने के कारण वह राजा से धन पाने की इच्छा रखता था। इसी बीच तक्षक नाग भी ब्राह्मण का वेश बनाकर वहाँ आ गया और ब्राह्मण से बोला– महामुने! आप कहाँ जा रहे हैं?

ब्राह्मण बोला– आज महाराज परीक्षित को तक्षक नाग अपनी विषाग्नि से जलाएगा।

मंत्रों द्वारा उसी विषाग्नि को शान्त करने जा रहा हूँ।

तक्षक बोला– विप्रवर! मैं वही तक्षक हूँ। मैं जिसे काट लूँ उसकी रक्षा सौ वर्षों में भी दस हजार मंत्रों द्वारा भी नहीं हो सकती। यदि तुममे शक्ति है तो मैं इस बहुत ऊँचे वृक्ष को डसता हूँ, तुम जिला दो। ये कहकर तक्षक ने उस विशालकाय वृक्ष को काट लिया और तुरन्त ही वह वृक्ष जल कर भस्म हो गया। उस वृक्ष पर कोई मनुष्य पहले से ही चढ़ा हुआ था वह भी विष ज्वालाओं से दग्ध हो गया। तदुपरान्त कश्यप ने अपने मंत्र शक्ति के प्रभाव से जले हुए वृक्ष को जीवित कर दिया। उसी के साथ वह मनुष्य भी जी उठा। यह देखकर तक्षक ने कश्यप के आन्तरिक शत्रु लोभ को जाग्रत किया। उसने कहा– हे ब्राह्मण! परीक्षित तुझे जितना धन देंगे मैं उससे दोगुना तुम्हें देता हूँ। इसे लेकर शीघ्र लौट जाओ और ब्राह्मण विवेकहीन होकर लोभ के वशीभूत होकर धन लेकर लौट आया।

तक्षक ने अनेक सर्पों को मुनि वेश में परीक्षित के पास भेंट स्वरूप फल भेजे और एक फल में कृमि (कीड़े) के रूप में स्वयं बैठ गया। सूर्यास्त के बाद समस्त फल मुनियों में बांटने के बाद एक बड़ा सा फल राजा ने उठाया। उसमें उन्हें कृमि दिखा, वही तक्षक था। उसने तुरन्त निकलकर राजा को लपेटा तथा अपनी विषाग्नि से मण्डप सहित राजा को भस्म कर दिया। प्रजा ने उनके पुत्र जन्मेजय को राजा बना दिया।

तक्षक से राजा की रक्षा करने जिसे आना था उस कश्यप की लोग निन्दा करने लगे। तब वह काश्यप ब्राह्मण शाकल्य मुनि की शरण में गया और बोला– भगवन्! ये मुनि, ब्राह्मण, सुहृद तथा अन्य भी मेरी निन्दा कर रहे हैं। इसका कारण बतायें? तब शाकल्य ऋषि ने क्षण भर ध्यान लगाकर उससे कहा– तुम तक्षक से महाराज परीक्षित की रक्षा करने वाले थे किन्तु मार्ग में तक्षक ने तुम्हें दोगुना धन का लालच दिया और तुम्हारी लालसा तुम्हारे कर्तव्य को निगल गई। जो मनुष्य विष, रोग आदि की चिकित्सा करने में समर्थ होकर भी काम, क्रोध, भय, लोभ, मात्सर्य अथवा मोह से लिप्त होकर विष एवं रोग से पीड़ित मनुष्य की रक्षा नहीं करता, वह ब्रह्म हत्या, शराबी, चोर, गुरु पत्नीगामी तथा इन सबके संसर्ग दोष से दूषित के समान ही महापातकी है। उसके उद्धार का कोई उपाय नहीं है।

महाराज परीक्षित धर्मात्मा, विष्णु भक्त एवं महायोगी तथा चारों वर्णों की रक्षा करने वाले थे। व्यास पुत्र शुकदेव जी से श्रीमद्भागवत की कथा सुनने वाले उन पुण्यात्मा राजा की रक्षा तुमने अपने धन लोभ के कारण नहीं की। इसीलिए श्रेष्ठ ब्राह्मण होते हुए भी बन्धु-बान्धव तुम्हारी निन्दा करते हैं। मरने वाले के प्राण कण्ठ तक रहने पर भी चिकित्सा करना चाहिए परन्तु तुम्हारा एक 'लोभ' का दुर्गुण तुम्हारे समस्त गुणों को नष्ट कर गया। जब मनुष्य अपने स्वार्थवश समर्थ होते हुए भी अपने कर्तव्य की अवहेलना करता है तो वह केवल निन्दा का 'पात्र' ही रह जाता है।

**– कुमकुम बिसारिया**
सीपरी बाजार, झाँसी।

# श्रेष्ठ कौन?

मैंने पूछा कौन हो तुम, मानव तो दिखते नहीं।
तो बोला इंसान नहीं हूँ मैं, और बनना चाहता भी नहीं॥1॥

मैंने चौंककर कहा, सृष्टि में सबसे श्रेष्ठ है मानव।
सब कुछ उसकी मुट्ठी में, धरती पाताल आसमान॥2॥

तो बोला यही तो है मानव में, जिससे सब हैं परेशान।
श्रेष्ठ होने पर भी नहीं समझता, वह भी है यहाँ मेहमान॥3॥

मुट्ठी में भर ले चाहे कुछ भी, पर जाना है दूसरे जहान।
पानी का बुलबुला है जीवन, फिर क्यों है उसको अभिमान॥4॥

चिढ़कर पूछा मैंने उससे, तू अपना तो नाम बखान।
प्रेम से बोला उड़कर वो, मैं भी हूँ उसकी संतान॥5॥

पखेरू का तन मिला है, यही है मेरी मिथ्या पहचान।
तुमसे ज्यादा दुनिया देखी, फिर भी नहीं मुझको अभिमान॥6॥

मैंने कहा मानव ने दुनिया को, बना दिया स्वर्ग सा महान।
फिर क्यों न करे वो, अपनी करनी पर अभिमान॥7॥

वो बोला थोड़ा झिड़क कर, सच सुनना चाहते हो नादान।
इसी विकास की दौड़ में, न जाने कहाँ खो गया इंसान॥8॥

स्वार्थ बढ़ गया है इस कदर, बन गया वो हैवान।
रिश्तों की कोई कद्र नहीं, संस्कृति पर कोई फक्र नहीं॥9॥

माँ–बाप सुविधा केन्द्र बने हैं, बुजुर्गों के लिए आश्रम खुले हैं।
बच्चों को अब दुलार कहाँ है, सम्बन्धों में प्यार कहाँ हैं?॥10॥

मन्दिर सूने मयखाने महके, दुराचार सरे बाजार खड़ा है।
सुख के लिए भीख मांगता, हर मानव इक द्वार खड़ा है॥11॥

तहस–नहस करने प्रकृति का, एक पूरा कारोबार खड़ा है।
सहम गया मैं सुनकर उसकी, श्रेष्ठ–श्रेष्ठ का दम भरता था॥12॥

वह मानव कहाँ आन पड़ा है? वह मानव कहाँ आन पड़ा है?

**– ब्र. राघवेन्द्र चैतन्य**
चिन्मय मिशन, झाँसी
मो.– 8707209996

# मान रहित होना

### ॐ हरि तत्सत् शिवोऽहम् सोहम्

परम पूज्य गुरू महाराज ब्रह्मलीन स्वामी श्री शुकदेवानन्द जी को सत्–सत् नमन। आपका आशीर्वाद सदैव हम पर बना रहे। 'शिवोऽहम्।'

अव्यक्त गति देह धारियों को कठिन है, क्योंकि सदा हम देह में ही रहते हैं और देह की आवश्यकतायें पूर्ण न होने पर हम ठीक से सो भी नहीं पाते, भजन तो बहुत दूर की बात है। शरीर में दर्द होने पर यदि हम दवा न लें तो हमें नींद नहीं आती और यदि संसार की चिन्ता हो तो भी हम चाह कर भी नहीं सो सकते, फिर चाहे हम लेट जायें पर नींद नहीं आती। वास्तविकता में हमें नींद में कुछ चाहिए नहीं है परन्तु जो चाह है वही नींद में बाधा है। इसी प्रकार हमें भगवान में लीन होने के लिए कुछ नहीं चाहिए अपितु जो चाह है वही बाधा बन जाती है। क्योंकि भगवान में लीन होने के लिए तो हमें ध्यान में जाने की आवश्यकता होती है और जब बाहरी सांसारिक समस्यायें हमें नींद में जाने से रोकती हैं तो ध्यान में कैसे जाने देंगी। इसीलिए कहा गया है कि संसार की अति कामना ध्यान में बाधा है। साधू योगियों का मन ध्यान में इसलिए लग जाता है क्योंकि संसार की कामना उनको व्यर्थ में परेशान नहीं करती। इस पर एक कहावत भी है 'साधू हो के खोया न। गृहस्थ हो के रोया न।' संसार में उलझा हुआ व्यक्ति सौ दलीलें ढूंढ़ लेता है। ये ऐसा है, वो वैसा है, जबकि उसका कोई लेना–देना नहीं होता फिर भी इन्हीं सबमें उलझा रहता है। परमात्मा ने हमें यहां हमेशा रहने के लिए नहीं भेजा है और न ही ऐसी सामर्थ्य बड़े से बड़े ज्ञानियों को मिली कि वे यहां के होकर ही रह जायें और एक ही शरीर बनाये रखें। सामान्य मनुष्य और ज्ञानी मनुष्य में बस अन्तर यह होता है कि ज्ञानी लोग आते हैं, जो वहां का काम करते हैं और चले जाते हैं और दूसरी तरफ सामान्य मनुष्य यहां की योजना बनाने में लग जाता है और इसी में उलझ कर रह जाता है। यहां तक कि भगवान श्री कृष्ण, मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम भी आये और कर्म किये और चले गये। क्या वे भी सफल हो पाये यहां हमेशा रहने के लिए? इसीलिए इस संसार को भगवान का मान कर कार्य करना चाहिए अपना मान कर नहीं।

संसार से मन को हटाकर प्रभु चरणों में लगाने से ही जीव का कल्याण संभव है। जबकि जीव अपना ध्यान प्रभु की खोज में लगाते हुए दुनिया और सुख–सुविधाओं में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है। जबकि प्रभु तो कण–कण में व्याप्त है। प्रभु जीव के भीतर बसे हुए हैं। इसलिए प्राणी को चाहिए कि वह हर प्राणी के अंदर बसे प्रभु को सच्ची आंखों से देखे। अनेक मानव सत्संग आदि को ढोंग करार देते हैं जबकि दोष सत्संग में नहीं होता बल्कि या तो वे मानव भ्रांति का शिकार होते है या उनके मन में दोष यानी मैल होता है। इसलिए उन्हे सत्संग अच्छा नहीं लगता है। गुरु देव तो गुरु मुख व मन मुख दोनों को समान समझकर उपदेश करते है। उनकी कृपा तीव्र बुद्धि व मंद बुद्धि दोनों पर समान रूप से बरसती है। इसी कारण गुरु सगुण रूप से जीव के कल्याण में एक महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। इसीलिए मनुष्य को हमेशा अच्छे विचार अपनाने चाहिए और प्राणी मात्र का कल्याण सोचना चाहिए। 'शिवोऽहम'

– वैभव वर्मा

## मेरे प्यारे गुरुदेव

गुरुवर जब से आपने,
त्यागा इस संसार को।
हम तरस गये देखने को,
आपके साकार चेतन स्वरूप को॥

पर जब भी ध्यान,
धरूँ मैं आपका।
और याद करूँ आपके,
स्नेह प्रेम और दुलार को॥

देकर आप स्वप्न में,
दर्शन मुझको।
कर देते हो मुझ पर,
अपनी ममतामयी छाँव को।

प्यारे सद्गुरुदेव ऐसे ही,
मुझ पर कृपा बरसाना।
जब-जब हृदय से,
याद करूँ मैं आपको॥

और संसार मोह माया से,
गुरुवर बचाना मुझको।
देकर ज्ञान खड़ग,
ब्रह्मानंद से मिलाना मुझको॥

– रेनू खरे

## सद्गुरुदेव

जीवन की नईया को,
पार लगा दो गुरुदेव।
अज्ञानता मिटा कर,
ज्ञान की जोति जगा दो गुरुदेव॥

राग द्वेष को जड़ से,
हटा दो गुरुदेव।
मेरे जीवन के खेवनहार,
नईया पार लगा दो गुरुदेव॥

झूठी मोह माया का,
विस्मरण करा दो गुरुदेव।
ज्ञान आपका स्मरण रहे,
ऐसी कृपा बरसा दो गुरुदेव॥

कण-कण में बैठे,
आत्म चेतन से मिला दो गुरुदेव।
अखण्ड, अनादि, अविनाशी,
परम पद में मिला दो गुरुदेव॥

– रागिनी खरे

# सत्व-शुद्धि

सभी अध्यात्म शास्त्रों में मन की शुद्धता पर बड़ा बल दिया गया है। मन की अशुद्धता है क्या जिसे दूर कर मन शुद्ध किया जा सके? मन की अशुद्धता तीन प्रकार की है मल, विक्षेप और आवरण। पाप के कारण मल, राग द्वेष के कारण विक्षेप और अज्ञान के कारण आवरण उत्पन्न होता है। हरि–नाम सिमरन से पाप, वैराग्य से राग द्वेष और तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के चिन्तन से अज्ञान की निवृत्ति होती है जहां तक बुद्धि की अशुद्धता का प्रश्न है, यह विषय लोलुप मन की अधीनता के कारण ही है। जब तक बुद्धि यह जानने में समर्थ नहीं है कि मनुष्य का हित किस बात में है और जब तक वह इस बात का निर्णय या परीक्षा किये बिना ही इन्द्रियों की इच्छा के अनुसार आचरण करती है, तब तक बुद्धि शुद्ध नहीं कही जा सकती। अतएव बुद्धि को मन और इन्द्रियों के अधीन नहीं होने देना चाहिए, किन्तु ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे मन और इन्द्रियाँ बुद्धि के अधीन रहें।

शास्त्रों में वर्णित अध्यात्मिक तथ्यों के गहराई तक जाने के लिए मानसिक शांति और निर्मलता की नितांत आवश्यकता है। मन में स्थिरता तभी आवेगी जब वह इधर–उधर भागना बंद करे। मन उन्हीं वस्तुओं की ओर भागता है जिससे उसकी आसक्ति है। उस आसक्ति की वस्तु से मन को हटाना ही सन्यास है। कार्य सिद्धि के लिये मानसिक सन्यास की अति आवश्यकता है। ये मन बालक की तरह से चंचल है। अनेक खिलौने चाहिए चुपचाप बैठना कठिन है। बाह्य वस्तुओं से निवृत्ति हो तो व्यस्त होने के लिये अन्य वस्तु चाहिए। इसकी इस आदत का हम सन्यास योग में प्रवृत्त करें कि वेदांत शास्त्र का अध्ययन करें और उस उपदेश को आत्म चिन्तन में प्रवृत्त करें। अरे मन को कुछ करना ही है तो यह अभ्यास बढ़ाया जाये। गृहस्थी छोड़ कर सन्यास नहीं। आसन प्राणायाम नहीं और कोई तीर्थ भी नहीं। ये सभी तब सफल होंगे जब अन्तःकरण शुद्ध हो जाये। अन्दर कीचड़ है, अध्ययन, अभ्यास, चिन्तन है नहीं तो क्या करेगा तुम्हारा संगम स्नान।

यह पण्डितों और धर्म गुरुओं के महाजाल से छूटकर ज्ञानी गुरु की खोज करो। सब आहार शुद्धि की बात कहेंगे। शंकराचार्य भगवान् कहते हैं "आह्रियत इत्याहार" अर्थात् जिसका आहरण किया जाये वह "आहार"। भोक्तता के भोग के लिए शब्ददि विषय–विज्ञान का आहरण किया जाता है। उस विषयोपलब्धि रूप विज्ञान की शुद्धि ही "आहार शुद्धि" है और यह आहार शुद्धि ही सन्यास है और इस तरह के सन्यास का नाम ही सत्व शुद्धि है। इससे ही आत्म स्मृति दृढ़ हो जाती है और इस स्मृति के रहते अविद्यान्कृत ग्रंथियां खुल जाती हैं और अंधकार के पार दिखाई देने लगता है। इसी प्रक्रिया से सत्व शुद्धि से वेदान्त का निश्चित ज्ञान और उससे ब्रह्मलोक की प्राप्ति और मुक्ति प्राप्त होती है।

संकलनकर्ता– **स्वामी वेद प्रकाशानन्द पुजारी**

# महावाक्य

शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्।
शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम् केवलोऽहम्॥

शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवा केवलोऽहम्।
चिदानन्द रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

निराकार रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥
परात्पर ब्रह्म शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

अहं ब्रह्म अस्मि शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥
मैं तत्त्वमसि सोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

प्रज्ञानम् ब्रह्म सोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्।
अयमात्मा ब्रह्म सोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

निरंजन ब्रह्म सोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥
आनन्दम् ब्रह्म सोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्।

शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवा: केवलोऽहम्।
चिदानन्द रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम्।

नहीं बुद्धि मन भी नहीं चित् हूँ मैं,
सदा एक रस हूँ मैं साक्षी शिवोऽहम्।

न मैं ज्ञान इन्द्र नहीं कर्म इन्द्रिय,
नहीं प्राण संज्ञा हूँ दृष्टा शिवोऽहम्॥

मैं तन भी नहीं हूँ न तन भी है मेरा,
नहीं सप्त धातु हूँ अविचल शिवोऽहम्।

न मैं पंच वायु नहीं पंच कोषा,
नहीं भूत पांचों सनातन शिवोऽहम्।

है मुझमें नहीं लोभ मोहादि कुछ भी,
सदा द्वेष रागों से न्यारा शिवोऽहम्।

नहीं लेश भी पुण्य पापों का मुझमें,
अकर्ता अभोक्ता अजन्मा शिवोऽहम्।

नहीं सुख दु:खों का भी आवेश मुझमें,
नहीं वर्ण आश्रम का बन्धन शिवोऽहम्।

न माता पिता बिन्धु कोई है मेरा,
सभी भूत प्राणी का कारण शिवोऽहम्।

सभी ठौर व्यापक में रहता निरन्तर,
सभी में सभी से निराला शिवोऽहम्।

सदा शुद्ध हूँ मैं सदा मुक्त हूँ मैं,
निराकार में निर्विकारी शिवोऽहम्।

नित्योऽहम् परोऽहम् शिव: केवलोऽहम्,
ये सत्गुरु की वाणी सदा ही शिवोऽहम्।

ये वेदों की वाणी सदा ही शिवोऽहम्,
सभी ब्रह्म ऋषियों का अनुभव शिवोऽहम्।

ये सद्गुरु का अनुभव अटल है शिवोऽहम्।
शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिव: केवलोऽहम्।

चिदानन्द रूपा: शिवोऽहम् शिवोऽहम्।
शिवोऽहम्

# सत्गुरु आरती

मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।
जिनकी चरण कमल रज सुन्दर,
भव दुःख सकल निबारती।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।
दया से जिनकी द्वैत दूर हो,
मन की माया टारती।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।
वाणी अमृतमय सुन जिनकी,
बुद्धि ब्रह्म को धारती।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।
पाकर के विज्ञान ज्ञान को,
पूर्ण शान्ति विस्तारती।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।
गुरु अविनाशी घट–घट वाशी,
दुनिया तुम्हें पुकारती।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।

## – पाठकों से निवेदन –

Website : www.akhandavedanta.com
E-mail : neerajnikhra@gmail.com, diszvaibhav@gmail.com

गुरु भक्त अपनी ई–मेल पर "**अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता**" पत्रिका नि:शुल्क चाहते हैं तो उपर्युक्त ई–मेल आईडी पर सम्पर्क कर सकते हैं।

## पाठकों से अनुरोध

वेदान्त आश्रम के समस्त भक्तों से अनुरोध है कि धार्मिक विषयों पर लेख या कविता, लिखने वाले नव–रचनाकार अपनी रचनाओं को विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता पत्रिका में छपने हेतु भेज सकते हैं। उचित रचनाओं को पत्रिका में स्थान अवश्य दिया जायेगा। रचनायें सुलेख में लिखी हों या फिर टाइप कराकर 10 जून 2025 तक अवश्य भेज दें। सधन्यवाद। **– सम्पादक**

**लेख व्हाट्सएप नं. : 9415503668 तथा 9455422522 पर भी भेज सकते हैं।**

# ब्रह्मलीन परमपूज्य श्रद्धेय [illegible] स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज

जन्म-चतुर्दशी ज्येष्ठ शुक्ल सं. 1991
(15 जून 1934)

ब्रह्मलीन-सप्तमी अगहन शुक्ल सं. 2077
(21 दिसम्बर 2020)

अनन्त श्री विभूषित श्री श्री 1008 श्री स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज परमहंस

अनन्त श्री विभूषित श्री श्री 1008 श्री स्वामी विश्वम्भरानन्द जी महाराज परमहंस